Shodhsamhita : Journal of Fundamental & Comparative Research
Vol. VII, No. 12(VIII) : 2021
ISSN: 2277-7067

पहाड़ी कोरवा : एक परिचय

संध्या शुक्ल शोधार्थी, समाजशास्त्र, डॉ सीवी रमन विश्वविद्यालय, बिलासपुर
डॉ रीना तिवारी सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, डॉ सीवी रमन विश्वविद्यालय, बिलासपुर

शोध सारांश

आदिवासी भारत देश की पहचान हैं। ये वे लोग है जो सदियों से प्राकृतिक स्थानों को बिना नुकसान पहुचाये निवास कर रहे है। ये लोग पारिस्थितिकी तंत्र का वो हिस्सा है जो इस तंत्र की निरंतरता को अनवरत बनाये रखने और सहेजने का कार्य करता है। प्रस्तुत शोध में कोरवा जनजाति के उत्पत्ति, वितरण, रहन सहन के तरीके, पारिवारिक रिति रिवाज, सामाजिक संरचना, आर्थिक संरचना, भोजन संग्रहण के तरीकों, रोजगार के माध्यमों और विकास के प्रति इनकी सोच का वर्णन करता है। लेख में उपलब्ध जानकारीयॉ मुख्यतः द्वितीयक स्त्रोतों से एकत्रित की गई है। अलग अलग जगहों पर उपलब्ध वर्णनों को एक जगह पर एकत्रित कर कोरवा जनजातिय जीवन की विवेचना की गई है।

कीवर्ड – कोरवा जनजाति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति

उत्पत्ति

कोरवा जनजाति के उत्पति के संबंध में ब्रिटानी प्रषासकों एवं विद्धानों के दो मत है – पहला कि ये जनजाति छोटा नागपुर जिले बरवाह कहा जाता है, में पाये जाने वाले जनजातियों के झुण्ड के उपसमुह है। दूसरा ये जनजाति मूल रूप से मुण्डई शाखा से संबंधित है डाल्टन ने लिखा है कि, कोरवा कोलेरियन श्रृंखला की एक कड़ी है, ये छोटा नागपुर के (बरवाह) के प्राचीनतम मूल निवासी असूरों के मिले जुले रूप हैं। अंतर इतना है कि, कोरवा खेती कार्य करते हैं तथा असुर लोहा गलाने का कार्य करते हैं। रसेल एवं हीरालाल ने भी कोरवा जनजाति को कोलेरियन समुह का माना है।

वितरण

छत्तीसगढ़ में पहाड़ी कोरवा विशेष पिछड़ी जनजाति जशपुर, सरगुजा, बलरामपुर, तथा कोरबा जिले में निवासरत है। सर्वेक्षण वर्ष 2005–06 के अनुसार इनकी कुल जनसंख्या 34122 थी। वर्तमान में इनकी जनसंख्या बढ़कर लगभग 40 हजार से अधिक हो गई है। पहाड़ी कोरवा जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कालोनिल डॉल्टन ने इन्हें कोलारियन समूह से निकली जाति माना है। किवदंतियों के आधार पर अपनी उत्पत्ति राम–सीता से मानते हैं। वनवास काल में राम–सीता व लक्ष्मण धान के एक खेत के पास से गुजर रहे थे। पशु–पक्षियों से फसल की सुरक्षा हेतु एक मानवाकार पुतले को धनुष–बाण पकड़ाकर खेत के मेढ़ में खड़ा कर दिया था। सीता जी के मन में कौतुहल करने की सूझी। उन्होंने राम से उस पुतले को जीवन प्रदान करने को कहा। राम ने पुतले को मनुष्य बना दिया यही पुतला कोरवा जनजाति का पूर्वज था।
आदिवासी प्राचीन समय से दुर्गम पठारी वनों से अच्छादित पहाड़ी भागों मे निवासरत् है इनके जीवकापार्जन और सुरक्षा के आधुनिकतम साधन नहीं होते हैं। इनके अर्थ व्यवस्था पूर्णतः भौगोलिक परिस्थितियों और प्रकृति पर निर्भर रहती है। ये अपनी विषिश्ठ संस्कृति, बोली एवं भौगोलिक परिस्थिति का सामना करते हुए जीविकापार्जन करते हैं।
प्रस्तुत अध्ययन कोरवा जनजाति पर केन्द्रीत है। छत्तीसगढ़ जनजाति बाहुल्य प्रदेष है। प्रदेष की कुल जनसंख्या का 32 प्रतिषत आबादी जनजातियों का है, जो प्रदेष के 18 जिलो में निवास करती है। वर्तमान में विभाजन द्वारा अब छत्तीसगढ़ में 27 जिले हैं। राज्य में लगभग 42 जनजातीय समूह में निवास करता है। प्रदेष की विभिन्न संस्कृति की झलक प्रदेष के विभिन्न दूरस्थ अंचलों तक फैले जनजातियों में स्पश्ट परिलक्षित होती है। इनमें राज्य सुदूर पूर्वी अंचल के बीहड़ जंगलों, पहाड़ों तथा पठारों में बसा ''कोरवा'' जनजाति बरसो से ही अलग–थलग तथा विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त जीविका और अस्तीत्व के लिये संघर्शरत रहा है।

छत्तीसगढ़ में कोरवा जनजाति की बसाहट

छत्तीसगढ़ में कोरवा जनजाति, उत्तरपूर्वी आदिवासी क्षेत्र जषपुर, सरगुजा एवं कोरबा जिले में पाये जाते हैं। ऐतिहासिक लेखों से ज्ञात है कि, ये जनजाति छोटा नागपुर से पलायन कर पूर्वी खुड़िया जमीदारी (वर्तमान में बगीचा विकासखंड, सन्ना तथा मनोरा विकासखंड के सीमावर्ती भाग जो जषपुर जिला के अंतर्गत आती है। इस क्षेत्र से यह जनजाति सरगुजा जिले के सीमावर्ती क्षेत्रों में पलायन कर गये, वही बस गये। पुनः सरगुजा से कोरवा समूह क्रमिक रूप से पलामु की उंची पहाड़ी क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेष के मिर्जापुर क्षेत्र के विध्याचल व दूरस्थ क्षेत्रों की ओर पलायन कर गये।
छत्तीसगढ़ में यह जनजाति जषपुर के मनोरा बगीचा विकासखंड में तथा सरगुजा में उत्तरपष्चिम में सामरी तथा उत्तरपूर्व में अम्बिकापुर में विस्तृत है। जनजाति का वृहद निवास जषपुर के पहाड़ी अंचल उत्तर पष्चिम से लेकर सरगुजा के सामरी के दक्षिण पष्चिम तथा उत्तरपूर्वी क्षेत्रों तक सर्वाधिक फैले हुय है। सरगुजा के सामरी तहसील के षंकरगढ़ एवं कुसमी में बसाहट है। जनसंख्या घनत्व की दृश्टि से लुण्ड्रा, राजपुर तथा जषपुर जिले में कोरवाओं की जनसंख्या अधिक फैली है। कोरबा जिले में अपेक्षाकृत कम आबादी है।

सामाजिक, आर्थिक स्थिति

कोरवा जनजाति अपने कठोर स्वभाव के कारण पृथक रूप से, उंचे स्थानों एवं घने जंगलों तथा पठारों में निवास करते हैं प्राचीनकाल से अति असभ्य होने व वेबरा खेती करने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान घुमन्तु जीवन व्यतीत करते है। घुमन्तु प्रवृति के अनुरूप ही इनकी आवासीय संरचना होती है। छोटी बस्तियां, टीलो, झोपड़ियॉ तो कही दो चार समूह के रूप में पाये जाते है। मकान घॉसफूस व लकड़ी के होते हैं। पूरी तरह लकड़ी के बत्तों से बना मकान का दीवार हाता है छत घॉसफूस व खपरैल का होता है।

खेती करना जिसमें ''क्यौरा'' अथवा ''दहिया'' खेती कहा जाता है। यह झूम खेती (स्थानांतरित कृशि) का ही स्वरूप है। परम्परागत कुदाली फौड़ा, कुल्हाडी, गैता, हसिया, हल्फी लकड़ी के हल तक सीमित है।

आर्थिक दशा अत्यंत पिछड़ी है। इनका कृशि भूमि पठारी पहाड़ी ढलानों में होने के कारण उपजाउ नहीं पाया गया है। कोरवा जनजाति का वनों से सहजीवी संबंध रहा है। अर्थात ये भोजन, ईधन, लकड़ी घरेलू सामग्री, जड़ीबूटी, औशधि, पषुओं के लिये चारा, कृशि, औजार के लिये वनों व वन्य जीवों पर तथा आचार विचार इत्यादि परम्परागत अथवा पिछड़ी हुई है।

कोरवा जनजाति द्वारा शिकार एवं भोजन संग्रहण

आखेट कोरवा जनजाति की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है, साधारणतः पहाड़ी कोरवा जनजाति षिकार करते हैं इस जनजाति में पुरूश वर्ग द्वारा आखेट कार्य किया जाता है। ये लोग आखेट अपने सरल उपकरणों धनुश बाण एवं फांदा की सहायता से करते हैं इनमें आखेट स्वयं व सामुहिक रूप से होता है। सामुहिक आखेट में पषु–पक्षी के मांस आपस में बराबर बांटते हैं। पहाड़ी कोरवा जंगली सुअर, खरगोष, वन बिलार, चुहा, बंदर, व सभी प्रकार के पक्षियों का आखेट करते हैं।

मत्स्य आखेट–

इस जनजाति के लोग मतस्य आखेट भी करते है। जो पूर्णतः वर्शा ऋतु में किया जाता है इनमें सभी स्त्री–पुरूश दोनों, बच्चे सभी मत्स्य से आखेट करते हैं। मत्स्य से आखेट स्वतः निर्मित फांदा जैसे जाल, पेनला, चोरिया, बंषी आदि की सहायता से किया जाता है। साथ ही साथ ये लोग छोटे–छोटे गढ्ठो में जहरीली घांरा (घास) को ढालकर भी मछली का आखेट करते हैं।

भोजन संग्रहण–

पहाड़ी कोरवा भोज्य पदार्थ के संग्रहण में आम, कटहल, महुआ, तेंदू, चार, इमली, जामून, बेल, कंदमूल, षहद, पत्तियां (भाजी) व वनोपज पदार्थ का संग्रहण करते है।

कोरवा जनजातियों में सामाजिक धार्मिक स्थिति एवं समस्याओं के अध्ययन से विदित है कि, इन जनजातियों का निवास स्थान दुर्गम पहाड़ी, पठारी व सघन वनीय क्षेत्र होने के कारण विकास से कोसो दूर है। समस्याओं के अंतर्गत इनमें जीविका साधनों का अभाव, रोजगार न मिलना, कृशि भूमि का अभाव, आवास की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, पेयजल की कमी, शिक्षा का अभाव, यातायात मार्गो की असुविधा इत्यादि है। यद्यपि विकास योजनाओं से उनके आर्थिक स्थिति में आंषिक परिवर्तन हुये है, तथापि अभी भी अधिकांष जनजातियों में रोजगार व व्यवसाय के विकास में विकास योजनाएं प्रयासरत है।

कोरवा जनजातिः सामाजिक संरचना

प्रत्येक समाज की तरह कोरवा समाज की भी अपनी संरचना है जो इनकी परम्परागत धरोहर है। सामाजिक संरचना को दूसरा नाम सामाजिक संगठन भी है जिसके अंतर्गत परिवार, नातेदारी आदि की व्याख्या करने पर भी सामाजिक संरचना के प्रत्येक हिस्सों को आका जा सकता है।

परिवार

कोरवा जनजाति मुख्यता दो शाखाओं में विभाजित है क) डीह कोरवा ख) पहाड़िया कोरवा। मिर्जापुर, मध्यप्रदेश के कोरवा के बारे में डी. एन. मजुमदार बतलाते हैं कि कोरवा तीन भागों में विभक्त हैं क) डीह कोरवा ख) दंड कोरवा और ग) पहाड़िया कोरवा। जहाँ तक विवाह का संबंध है, प्रत्येक शाखा अपने ही शाखा में विवाह संबंध स्थापित करना पसंद करते हैं। 45 प्रतिशत कोरवा सूचकों ने बतलाया कि कोरवा जनजाति समुदाय के सभी लोग एक ही हैं और परम्परागत नियमों के अनुसार कोरवा के किसी शाखा के साथ विवाह संबंध स्थापित किया जा सकता है।

कोरवा समाज में पितृ – सतात्म्क परिवार ही पाए जाते हैं। सभी कोरवा सूचकों ने बतलाया की आदि काल से ही इनका परिवार पितृ सतात्म्क तथा पितृ स्थायी रहा है और आज भी वंश परम्परा पिता के नाम से ही चलती है, संपति का अधिकार स्त्री को नहीं बल्कि पुरूष का होता है तथा स्त्री अपने माँ दृ पिता का घर छोड़कर, पति के घर जाकर रहती है। कोरवा समाज में पितृ सतात्म्क तथा पितृ स्थायी व्यवस्था होने के बावजूद भी महिलाओं की सामाजिक स्थिति ख़राब नहीं हैं, अधिकांशतरू कोरवा परिवार एक विवाहि या वैयक्तिक व्यवस्था पर ही आधारित है और यह पाया गया है कि ऐसे परिवारों की स्त्री की सामाजिक स्थिति बहुत ही अच्छी है। 65 प्रतिशत महिला सूचकों ने बतलाया की उनका समाज पुरूष प्रधान है लेकिन परिवार में कोई भी काम बिना उनके सलाह लिए संपन्न नहीं होता है। इन सूचकों ने आगे बतलाया कि संपति पर उनका अधिकार नहीं है, लेकिन आभूषण, बर्तन आदि जो समान वे अपने पिता के घर से शादी के बाद पति के घर लाती है, उस पर उनका अधिकार है। इन लोगों का मत है कि स्त्री एवं पुरूष गाड़ी के दो पहिया है, यदि एक पहिया खराब हो जाए या उसका सही रूप नहीं आका जाए तो गाड़ी को सही रूप से नहीं खींचा जा सकता। इनका यह कथन कितना सत्य है, वह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि 30 प्रतिशत परिवारों में यह पाया गया है कि पत्नी की मृत्यु के पश्चात परिवार के सारे आर्थिक कार्य

ठप पड़ गए और परिवार के सामाजिक एवं आर्थिक कार्यों को सक्रिय करने के लिए, कोरवा पुरूषों द्वारा पुनः विवाह किया गया था। 10 प्रतिशत कोरवा परिवार का स्वरुप बहुपत्नी का था जिसके अंतर्गत एक कोरवा पुरूष को दो पत्नियाँ थी। शत दृ प्रतिशत कोरवा सूचकों ने बतलाया कि उनकी आर्थिक स्थिति आज भी इतनी दयनीय है की वे एक पत्नी से अधिक रखने में असमर्थ है लेकिन पत्नी, यदि बाँझ होती है तो वंश बढ़ाने के लिए घर में रखने के साथ ही दूसरी पत्नी लायी जाती है। ऐसे परिवारों में पहली पत्नी की सामाजिक स्थिति पर कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता।

नातेदारी

कोरवा जनजाति के सामाजिक संरचना में नातेदारी व्यवस्था का बड़ा ही संस्कृतिक महत्व है क्योंकि इसे के द्वारा सामाजिक व्यवहार सही रूप से संचालित होते है। अन्य जातियों के तरह, कोरवा जनजाति में नातेदारी की दो रूप हैं। इनके संस्कृतिक में यह पाया गया है कि वैवाहिक संबंध ऐसे लोगों से स्थापित किया जाता है जिनके साथ खून का रिश्ता नहीं होता है। अतरू पति पत्नी के रिश्ते के जुड़ते ही पति के रिश्तेदारों के साथ पत्नी का और पत्नी के रिश्तेदार के साथ पति का रिश्ता स्वतरू जुड़ जाता और इस प्रकार के बिना खून के रिश्ते को सम्मिलित संबन्ध के नाम से जाना जाता है। दूसरा नाता माता पिता तथा उनकी सन्तान के बीच होता है जो एक ही खून का रिश्ता होता है जिसे समान रूधिर संबंध के नाम से जाना जाता है। शत प्रतिशत सूचकों ने बतलाया की इनके बीच गोत्र को लोग भूल रहें है। अतरू वैवाहिक संबंध जोड़ने के पहले यह पता लगाया जाता है कि दोनों पक्षों में खून का रिश्ता कभी था या नहीं। यदि खून का रिश्ता स्थापित हो जाता है रो वैवाहिक संबंध नहीं होगी। इन सूचकों ने आगे बतलाया कि विभिन्न रिश्तेदारों को आपस में प्रतिदिन वास्ता पड़ता है। परम्परागत सामाजिक नियमों के अंतर्गत कुछ नियामक व्यवहार बने हुए जो रिश्तेदारों के आपसी व्यवहारों को संचालित करती है तथा समाज को संगठित रखती है। अन्य जातियों के संगठित परिवारों की तरह इनके यहाँ भी नियामक व्यवहार के अंतर्गत परिहार तथा परिहास के व्यवहारों को सामाजिक स्वीकृत प्राप्त है।

पुत्रवधू तथा सास ससुर परिहार दामाद तथा सास परिहार, भाई बहन परिहार के अंतर्गत यह निर्धारित किया गया है कि इन रिश्तेदारों के बीच कैसा व्यवहार हो? कोरवा समाज में पुत्रवधू अपने ससुर के सामने सर पर अंचल रखकर जाती है। एक ही खाट पर साथ नहीं बैठती तथा उनके कमरे में सो नहीं सकती है। इसी तरह दामाद भी अपने सास तथा पत्नी के बड़े भाई से तथा स्त्री अपने पति के बड़े भाई से परिहार का व्यवहार रखती है। यह भी पाया गया है कि कोरवा संस्कृति में इस बात पर बल दिया जाता है कि जवान भाई दृ बहन आपस में कम मिले ताकि उनके बीच यौन संबंध न हो जाए।

परिहास व्यवहार के अंतर्गत अपनी पत्नी की छोटी बहन तथा पति के छोटे भाई से हंसी मजाक की जाती है। कोरवा सूचकों ने बतलाया की अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद पत्नी की छोटी बहन तथा पति के मृत्यु के बाद पति के छोटे भाई से शादी की जा सकती है।

गोत्र

मुंडा, उराँव, हो, संथाल जनजातियों की तरह कोरवा जनजाति के लोग अपने नाम के साथ गोत्र के नाम का प्रयोग में नहीं लाते हैं। 65 प्रतिशत कोरवा सूचकों ने बतलाया की गोत्र के बारे में उनकी जानकारी बहुत कम है और इसीलिए इसे नाम के साथ वर्षों से इस्तेमाल नहीं किया जाता है।

विवाह

जन्म के बाद, बच्चों का विकास ऐसे वातावरण में होता है जिसमें रहकर वह अपने संस्कृतिक, अलिखित रीति रिवाजों के बारे में शिक्षा प्राप्त करता है। इस क्षेत्र में उसके परिवार तथा पड़ोसियों का भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

विवाह के महत्व तथा भूमिका के संबंध में कोरवा लोग पूर्ण रूप से परिचित हैं। विवाह की आवश्यकता इसलिए हुई क्योंकि इसके द्वारा यौन संबंध को नियंत्रित किया जाता है। इस संबंध द्वारा समाज को अव्यवस्थित होने से बचाया जा सका है। सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकता, परिवार के सदस्य होकर ही पूरा किया जा सकता है। परिवार का गठन, पति पत्नी और बच्चे से होता है। सामाजिक रीति रिवाज के अनुसार, हर परिवार का यह कर्तव्य है कि कोरवा समाज को कायम रखने के लिए, संतान उत्पन्न करें तथा संतान को विवाह के बाद ही सामाजिक मान्यता प्रदान की जा सकती है।कोरवा जनजाति में अन्तर्विवाह की प्रथा प्रचलित है अर्थात अपनी ही जाति में शादी करते हैं, दूसरी में नहीं।

इस तथ्य से पहले ही अवगत कराया जा चुका है कि इनके बीच एक विवाह की प्रथा है जिसके अंतर्गत अधिकांशत कोरवा परिवारों में एक पुरूष तथा एक स्त्री के नियम का पालन किया जा रहा है। कुछ ही कोरवा परिवारों में पाया गया कि पत्नी के बाँझ होने के चलते दूसरी लाई गई। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया कि पति के मृत्यु के बाद पति के छोटे भाई से तथा पत्नी की मृत्यु के बाद छोटी बहन से भी शादी की जाती है।

विवाह – रस्म लड़की के घर में संपन्न की जाती है। अधिकांशतरू कोरवा लोगों ने बतलाया कि उनके परम्परागत रीति दृ रिवाज के अनुसार, चढ़के शादी में विवाह रस्म लड़की के घर में संपन्न की जाती है। परंपरागत रीति दृ रिवाज के अनुसार विवाह के सभी रस्म मड़वा में संपन्न की जाती है। परिवार के महिलाओं द्वारा या नऊआ द्वारा लड़के को लड़की की मांग सिन्दूर लगाने को कहा जाता है। जिसके पश्चात सभी उपस्थित बड़े लोग, वर एवं वधू को आशीष देते हैं।इनके अतिरिक्त सरंचना में तलाक की प्रथा भी प्रचलित है, लेकिन अधिकांशतरू कोरवा सूचकों ने बतलाया कि आजकल तलाक, शायद ही किया जाता है।

कोरवा जनजातिः आर्थिक संगठन

वर्षो से कोरवा जनजाति के लोग छोटानागपुर के पहाड़ों और जंगलों में बसे हुए हैं। जंगल के इस प्राकृतिक वातावरण में वर्षों से रहते हुए, इन्हें यह पता है कि प्रकृति में पाई जाने वाली वस्तुओं को वह किस प्रकार प्राप्त करके उपयोग करे ताकि उसका भौतिक शरीर बना रहे हैं। जंगलों में घूम घूम कर फल फूल एकत्र करना, पशुपालन, खेती करना, हाट बाजार जाकर छोटे छोटे व्यापार करना शहरों में तथा राज्य के बाहर जाकर अस्थायी रूप से वास कर श्रम करना। यह सभी भौतिक शरीर के बनाये रखने के भिन्न भिन्न अर्थ व्यवस्थायें हैं जिन्हें अन्य जनजातियों की तरह, कोरवा जनजाति के लोगों ने भी अपनी जीविका के लिए खोज निकाला है। शत प्रतिशत कोरवा सूचकों का कथन है कि वर्षों से वे अपने प्राकृतिक साधनों का उपयोग करने के लिए प्रयत्नशील है तथा इस प्रयास में उन्हें कई बाधाएं झेलने पड़े हैं और फलस्वरूप आज भी इनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है कोरवा लोग आज भी कमाया – खाया के सिद्धांत पर अपने को संतुष्ट रख रहे हैं तथा बचत तत्व का शत प्रतिशत अभाव है।

जहाँ तक इनके आर्थिक स्वरुप का प्रश्न है, इनकी आर्थिक व्यवस्था भिन्न भिन्न अर्थ व्यवस्था का सम्मिश्रण है। वे फल फूल एकत्र करते हैं, कृषि करते हैं तथा आस पास के शहरी क्षेत्रों में जाकर जीविका के लिए मजदूरी करते हैं।

फल फूल एकत्र करना

अधिकांशत कोरवा, जंगलों और पहाड़ों में वर्षों में रहते आये हैं। उनका कहना है कि उनके क्षेत्र में फल कंद मूल आदि इतनी मात्रा में प्राप्त होता है कि समय समय पर हुए आकाल के समय भी इन्हें कठिनाई नहीं हुई और इन्हें भोजन प्राप्त होता रहा। आज भी, ये अपने पूर्वजों की तरह फल फूल पर अपनी जीविका के लिए मुख्य रूप से निर्भर हैं। फल – फूल एकत्र करने का काम मुख्यतरू महिलाओं द्वारा की जाती है जो पूरे वर्ष इनकी जीविका का साधन है। शत प्रतिशत कोरवा सूचकों ने बतलाया कि फल फूल के अतिरिक्त शिकार भी इनकी जीविका का साधन वर्षों से रहा है। इन सूचकों ने आगे बतलाया कि इनके पूर्वजों को आज की तरह आर्थिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता था क्योंकि वे जंगल के राजा थे तथा जंगल के खाद्य पदार्थों को तथा जानवरों के शिकार करने से कोई उन्हें रोकने वाला नहीं था। जंगल इतना घना था तथा आने जाने की सुविधाएँ आज की तरह नहीं थी, जिसके फलस्वरूप जंगल विभाग के कर्मचारी, कोरवा क्षेत्र में पहुँच ही नहीं पाते थी, जिसके फलस्वरूप इनके पूर्वज जंगल के राह से कम नहीं थे। इनके पूर्वजों का आर्थिक जीवन तथा स्वास्थ्य आज की तरह खराब नहीं था। आज बाहरी दुनिया से उनका संपर्क बढ़ गया है जंगल के कर्मचारी उनके क्षेत्र में छा गये हैं जिनके द्वारा सरकार के जंगल नियमों का पालन करवाया जा रहा है, जिसके कारण उनकी आर्थिक जीवन ऐसी बन कर रह गई है कि पूर्वजों की तरह वे आज जंगल के राजा नहीं रह गये हैं। शिकार करना मना है और इसी कारण उनके घरों में तीर धनुष शायद ही पाया जाता है। शिकारी जीवन भूतकाल का विषय बन कर रह गया है जिसके कारण मांसहारी भोजन नहीं प्राप्त होने के वजह से अपने पूर्वजों की तरह स्वस्थ नहीं है।

70 प्रतिशत कोरवा सूचकों ने जंगल (जो उनके जीविका का मुख्य साधन वर्षो से रहा है) के विषय में जो कहा वह गौर करने लायक है। इन्होंने बतलाया कि जंगल बचाव की समस्या उस समय उतनी क्यों नहीं थी, जब बाहरी दुनिया के संपर्क से अलग रहकर इनके पूर्वज जंगल के लकड़ी, पशु तथा खाने के पदार्थों को इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र थे। इस छूट के बावजूद भी, घने जंगल थे, पशु की तथा फल आदि की कमी नहीं होती थी। लेकिन आज जंगल सुरक्षा पर राशि खर्च करने पर जंगल तथा जंगल के पशु खत्म होते जा रहे और इसके लिए अन्य जनजातियों की तरह कोरवा लोगों को ही क्या उत्तरदायी ठहराया जाना किया ठीक है?

पशुपालन

जीविका के साधनों में पशुपालन का भी स्थान है। मुर्गी, सुअर, बकरी, गाय आदि के तरफ वे अपनी जीविका के लिए आकर्षित हैं, लेकिन उनकी आर्थिक संरचना आज भी ऐसी है जिसमें बचत का कोई स्थान नहीं है। जिसके फलस्वरूप पशुपालन अधिकांशतरू लोगों द्वारा नहीं की जाती है। यह पाया गया कि 20 प्रतिशत कोरवा सूचकों के पास बकरियां, मुर्गियां थी। 5 प्रतिशत सूचकों के पास गाय थी तथा दो परिवारों के पास सुअर था। शत प्रतिशत ने यह व्यक्त किया की सरकार की तरफ से बकरी, मुर्गी तथा गाय मुफ्त में वितरित की जाने चाहिए। सुअर के बारे में इन लोगों ने बतलाया की इनकी संस्कृति पर हिन्दूओं का प्रभाव अधिक पड़ा है। क्योंकि वर्षों से हिन्दू इनके पड़ोसी रहे हैं। अतरू इनका कथन है की सुअर पालने से सामाजिक स्तर प्रभावित होगा और उच्च जाती के लोग इन्हें तुच्छ दृष्टि से देखेंगे। जिस कोरवा परिवार के पास बकरी, मुर्गी आदि है वे समय पड़ने पर उसे बाजारों में जाकर बेच देते हैं और प्राप्त राशि से अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ग

कृषि

यह पहले ही कहा जा चुका है कि कोरवा का आर्थिक संरचना का रूप मिश्रित है उनका झुकाव स्थिर खेती की ओर रहा है। इनकी पूर्वजों द्वारा बेवरा खेती की जाती थी। इसके अंतर्गत 2 या 3 एकड़ जंगल जमीन को चुना जाता था। उस जमीन के सारे लकड़ियों को काट कर सूखने के लिए छोड़ दिया जाता था तथा 2 या 3 माह के बाद लकड़ियों को जला दिया जाता था तथा जले हुए लकड़ी के राख को जमीन पर फैला दिया जाता था जिससे जमीन की उत्पादन शक्ति बढ़े। इस तरह से तैयार किए गये जमीन में 2 या 3 वर्ष तक मुख्य रूप से मकई उपजाया जाता था जिसके बाद जमीन की उत्पादन शक्ति

समाप्त हो जाती थी और अन्य जगहों में जाकर जंगल काटकर कृषि खेत उसी तरह तैयार की जाती थी सरकार द्वारा इस तरह की खेती को वर्जित कर दिया गया है और इसे अब नहीं की जाती है।

मजदूरी

कृषि मजदूर के रूप में ये वर्षों से काम रहे हैं। स्वंत्रता के पहले स्थानीय जमींदार लोग, इनसे बेगारी करवाया करते थे। बेगारी प्रथा के अनुसार कोरवा स्त्री – पुरूष से काम तो करवाया जाता था, लेकिन मजदूरी नहीं दी जाती थी। यदि कोई कोरवा मजदूरी मांग बैठता था या काम करने से इंकार करता था तो उसे हंटर से मारा जाता था जिसके चलते शायद ही कोई बेगारी के लिए ना करने के हिम्मत रखता था। जमींदारी खत्म होने के बाद बेगारी प्रथा भी स्वतरू समाप्त हो गई। लेकिन बेगारी से ख़राब प्रथा बंधुवा मजदूर का था, जिसे हाल ही में सरकार के द्वारा समाप्त किया जा चुका है।
मजदूरी आज भी इनकी जीविका का एक मुख्य साधन है। कृषि कार्य के समय इन्हें आस दृ पास के कृषकों को यहाँ मजदूरी कार्य मिलती है और इसके अतिरिक्त, कुछ कोरवा लोग बंगाल भी अस्थायी रूप से चले जाते हैं और कृषि, मजदूरी कर के पैसा कमाने का प्रयास करते हैं।

धर्म

1981 के जनगणना में कोरवा की कुल आबादी 21940 है जिसमें 20959 कोरवा को हिन्दू धर्म के अंतर्गत बतलाया गया है। सर्वेक्षण के समय पता चला कि वर्षो से इनके पड़ोसी हिन्दू रहे हैं जिसके फलस्वरूप कोरवा संस्कृति पर इनका प्रभाव पड़ा है अतरू1981 के जनगणना आंकड़ों के आधार पर यदि यह कहा जाय कि अधिकांशतरू कोरवा हिन्दू धर्म के मानने वाले है तो यह ठीक प्रतीत नहीं होता। आज भी कोरवा लोग अपने परंपरागत धर्म में विश्वास रखते हैं। उनका विश्वास है कि उनके निवास स्थान के आप पास अनके देवी देवता है जिन्हें यदि प्रसन्न नहीं रखा जाय तो उन्हें नुकसान पहुँच सकता है। इन पारलौकिक शक्ति में विश्वास ही धर्म है।

अन्य जनजातियों की तरह कोरवा लोगों को भी जीववाद में विश्वास है। इनका विश्वास है कि उनका वातावरण जीवात्माओं से भरा है। इन जीवात्माओं को परंपरागत विधि विधान से यदि प्रसन्न नहीं किया जाए तो हानि पहुंचेगी। 55 प्रतिशत सूचकों ने बतलाया की वर्षो से वे पूर्वजों की पूजा करते आयें हैं। प्रत्येक घर के धार्मिक स्थानों में पूर्वजों को देवताओं के बीच स्थान दिया जाता है तथा सभी धार्मिक पूजा के समय अन्य देवी देवताओं के साथ पूर्वजों को भी याद किया जाता है तथा निर्धारित विधि विधान से उन्हें प्रसन्न किया जाता है ताकि हानि नहीं हो।

इनके द्वारा प्रकृति की भी पूजा की जाती है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि सर्वशक्तिमान होते हैं। अन्य जनजातियों की तरह सूर्य को सिंगबोंगा को सर्वशक्तिमान भगवान मानते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

गोयल, अनुपम – ''भारत में आर्थिक विकास, नियोजन तथा सांख्यिकी– शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी 1995, पृ.सं. 92.
साहू, चतुर्भुज – ''आदिम जनजाति पहाड़िया के लिए उन्नयन प्रयास'' वन्यजाति, अप्रैल 1995, अंक 2, पृष्ठ सं. 6–12.
सरकार, प्रमोद कुमार – ''आर्थिक विकल्प के अभाव में जनजातीय आखेट जनजाति'' वन्य जाति जुलाई, 2000 अंक नं. 3 पृ. सं. 29–32.
सारस्वत, ऋतु – ''भारतीय जनजातियॉ : समस्याएं एवं सामाधान, कुरूक्षेत्र, दिसम्बर 2005, पृष्ठ संख्या 17–18.
दुबे, भरत कुमार – ''विकास की राह पर जनजातीय समाज'' कुरूक्षेत्र, दिसम्बर 2008, पृष्ठ सं. 20–23.
उपाध्याय, विजय शंकर एवं विजय प्रकाश शर्मा – ''भारत की जनजातीय संस्कृति'', 2004.
छत्तीसगढ़ जनसंपर्क रायपुर, विकास एवं विश्वास के 12 वर्ष, 2015